CHETANA
INTERNATIONAL JOURNAL OF EDUCATION (CIJE)
Peer Reviewed/Refereed Journal
(ISSN: 2455-8729 (E) / 2231-3613 (P))
Impact Factor
SJIF 2023 - 7.286

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

शिक्षा एवं समाज के मध्य अंतःसम्बन्धों का समाजशास्त्र

डॉ ज्योति सिढाना
सह-आचार्यसमाजशास्त्र विभाग ,
राजकीय कला कन्या महाविद्यालय कोटा (राजस्थान)
Email-drjyotisidana@gmail.com, Mobile-

First draft received: 22.08.2023, Reviewed: 28.08.2023, Accepted: 31.08.2023, Final proof received: 31.08.2023

Abstract

ऐसा माना जाता है कि शोध और विकास के मध्य गहरा सम्बंध है क्योंकि शोध कार्य के परिणामों के आधार पर ही विकास कार्यों के लिए उपयुक्त नीति बनायी जाती है. अतः अकादमिक संस्थानों में किये जाने वाले शोध देश के समग्र विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। प्रोफेसर जेनार्लेकर ने विज्ञान नीति पर चर्चा करते हुए कहा था कि भारत सरकार और विभिन्न .वी. सरकारों ने विज्ञान एवं अन्य अनुसंधानों को दिशा देने के लिए अनेक शोध संस्थान स्थापित किये हैं ताकि एक वैज्ञानिक अपने विचार एवं क्रियाओं की स्वतंत्रता के साथ एक स्वायत्तशासी परिवेश में सक्रिय हो सकेपरन्तु इन संस्थानों के . विश्विद्याल ,युवा वैज्ञानिकों के लिए शोध सम्बन्धी रोजगार का ह्रास ,प्रशासनिकीकरणयों में विज्ञान एवं समाज विज्ञान विषयों की उपेक्षा तथा इन क्षेत्रों में कार्यरत विशेषज्ञो की तुलनात्मक रूप से कम प्रतिष्ठा कुछ ऐसे पक्ष हैं जो भारत की ज्ञान अर्थव्यवस्था के विकास के सम्मुख गंभीर चुनौती उत्पन्न करते हैं .पिछले कुछ वर्षों से अकादमिक संस्थानों में किये जाने वाले शोध कार्यों की गुणवत्ता पर संदेह किया जाता रहा है और साथ ही विश्व की रैंकिंग में भी हमारा कोई विश्वविद्यालय उच्च स्थान प्राप्त नहीं कर सका है। संभवतः इसीलिए पीएच पेस्ट-कापी-की डिग्री के फर्जी होने या शोध कार्य के कट .डी.होने की बढती प्रवृति ने प्लेग्रिज्म के माध्यम से इस प्रकार के शोध कार्यों पर रोक लगाने का प्रयास किया है .क्या वास्तव में उच्च शिक्षण संस्थानों/विश्वविद्यालयों में शोध की स्थिति इतनी खराब है कि उसमें नवाचार, नवीनता, वैधता जैसे तत्वों का अभाव है? अगर ऐसा है तो क्यों? यह सोचने का विषय है?

Keywords: अकादमिक धोखाधड़ी, उपभोक्ता समाज, बर्टांड रसेल ,पाओलो फ्रेरेप्रतिरोध की संस्कृति , आदि.

शिक्षा और शिक्षक की सामाजिक भूमिका इस पक्ष के साथ जुडी होती है कि वह जनसँख्या के अधिकांश भाग को विचार सृजन के साथ सम्बद्ध कर दे, तब नवजागरण एवं वांछनीय परिवर्तन तीव्र गति से प्राप्त किए जा सकते हैं। बर्टांड रसेल का मत है कि किसी भी समाज में शिक्षा का मूल लक्ष्य समाज के विकास के अवसर उपलब्ध कराना तथा बाधाओं के प्रभाव को दूर करना है। इसके अतिरिक्त संस्कृति का आंतरीकरण, व्यक्ति की क्षमताओं का सर्वाधिक विकास तथा योग्य नागरिकों को प्रशिक्षण देना भी शिक्षा का लक्ष्य है। रसेल स्वीकार करते हैं कि शिक्षा में संभावित स्वतंत्रता अत्यधिक आवश्यक है। किसी भी प्रकार का दबाव शिक्षा में वास्तविकता को तथा बौद्धिक हितों को नष्ट कर देता है और उन पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आलोचनात्मक चेतना पैदा करना, मनुष्य को सामाजिक-राजनितिक पूंजी में बदलना-आर्थिक-सांस्कृतिक, व्यक्तित्व का समग्र विकास करना, चरित्र निर्माण करना, प्रतिरोध की संस्कृति उत्पन्न करना और दासता व शोषण से मुक्त कराना है .

दूसरी तरफ यह भी चिंतन का विषय है कि क्या पुस्तकों का स्वरूप, उसकी पाठ्य रचना राजनीतिज्ञों द्वारा तय की जानी चाहिए ?क्या इसे शिक्षा प्रणाली की स्वायत्तता पर प्रहार की संज्ञा नहीं देना चाहिए? विश्वविद्यालय एवं उच्च शैक्षणिक संस्थानों की स्वायत्ता अकादमिक स्वतंत्रता को स्थापित करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। स्वायत्ता का अभिप्राय शिक्षण प्रणाली में तथा विषय संरचना में राज्य के न्यूनतन हस्तक्षेप से है। साथ ही इस तरह के प्रयास को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मूलभूत अधिकार के विरोध में अनुचित कहा जा सकता है। पाओलो फ्रेरे ने अपनी पुस्तक 'पेडागोगी ऑफ़ ओप्रेसड' (Pedagogy of Oppressed) में लिखा कि शिक्षा भी राजनीति की तरह है जिस प्रकार राजनीति वर्गीय होती है, शिक्षा भी है। अगर यह तर्क सही है तो शिक्षण संस्थानों के जनहित केन्द्रित चरित्र पर संदेह होना स्वाभाविक है। क्योंकि समाज विज्ञानों की एक ही भूमिका होती है कि वे विद्यार्थियों) युवाओं में आलोचनात्मक चेतना/critical

mindset) को विकसित करे। अगर ऐसा नहीं हो रहा है और शिक्षा अधीनस्थ एवं अनुकरण करने वाले नागरिक उत्पन्न कर रही है तो जनहित केन्द्रित विकास सवालो के घेरे में आ जाता है।

आईएलबीएस दिल्ली के निदेशक ने कुछ समय पूर्व अपने एक लेख में चिंता जाहिर करते हुए स्पष्ट किया कि वर्ष 2020 में कोविड के दौर में वैज्ञानिक शोध की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है देखा जाए तो . लगभग एक लाख से ज्यादा शोध लेख विभिन्न वैज्ञानिक जर्नल्स में प्रकाशित हुए हैं लेकिन इसमें चिंताजनक बात यह है कि इन वैज्ञानिक लेखों की जो बहुस्तरीय बौद्धिक समीक्षा)peer review(होती थी अब वह समाप्त सी हो गयी-है जिसके कारण अकादमिक धोखाधड़ी और अनैतिक व्यवहार बढ़ गया है. इसलिए वैज्ञानिक शोध आलेखों की संख्या तो बढ़ गई है लेकिन गुणवत्ता में कमी आई हैदेखा जाए तो . उनकी यह चिंता न केवल शैक्षणिक जगत के लिए अपितु समाज व राष्ट्र इसमें कोई दो राय नहीं है .के विकास के लिए भी खतरे का संकेत है कि वैज्ञानिक शोध जो एक निश्चित परिणाम लेकर विकसित होने चाहिए थे वह अब नहीं हो रहे हैंऐसा लगने लगा है कि वर्तमान में . किए जाने वाले शोध विशेष रूप से विज्ञान के क्षेत्र में किये जाने वाले शोध बाजार को लाभ पहुँचने वाली सूचनाएं ही उपलब्ध करवाने में जुटे हैं परन्तु वह यह भूल जाते हैं कि वैज्ञानिक सूचनाएं पूर्वाग्रहों व व्यक्तिगत मूल्यों से रहित और विश्वसनीय होनी चाहिए न कि बाजार केन्द्रितकोविड के दौर में कुछ दवाइयों के दुष्प्रभाव या किसी वैक्सीन . से रोगी की मृत्यु होने या किसी अमुक दवा से कोविड से पूर्णतः स्वस्थ होने की खबरे आये दिन सुर्खियों में थी फिर बाद में उनके खंडन या स्पष्टीकरण भी स◌ामने आएऐसी सूचनाएं तभी अस्तित्व में आ . सकती हैं जब किसी शोध लेख को सम्बंधित विशेषज्ञों के समूह द्वारा इस तरह की सूचनाओं ने .समीक्षा किए बिना प्रकाशित कर दिया जाए समाज में लोगों में भय और भ्रम की स्थिति उत्पन्न करने में कोई कसर परिणामस्वरूप ऐसी .नहीं छोड़ीअनेक घटनाएँ सामने आई जिसमें लोगों ने कोविड की चपेट में आने से पहले ही केवल भय और भ्रम के कारण अपनी जान गंवा दी तो कुछ ने इस कारण आत्महत्या कर ली कि कहीं हमारे कारण अन्य परिवारी जन भी प्रभावित न हो जाएइस . तरह की भ्रामक और मिथ्या सूचनाओं को सार्वजानिक करनाक्या इसे अकादमिक बेईमानी)Academic Dishonesty .नहीं कहा जाएगा (कोई भी शोध या सूचना चाहे वह चिकित्सा के क्षेत्र से सम्बंधित हो या सामाजिक या फिर अर्व्यवस्था से जुडी हो बिना ,धार्मिक ,राजनीतिक किसी बौद्धिक समीक्षा के सार्वजानिक नहीं की जानी चाहिए यह शोधकर्ता और सूचनादाता की नैतिक जिम्मेदारी होती हैऐसा न होने . पर समाज में फैलने वाली अव्यवस्था और भय के लिए कौन जिम्मेदार .यह गंभीर चिंतन का विषय है ?होगा

सवाल यह है कि क्या ऐसी स्थिति समाज विज्ञानों एवं मानविकी के विषयों में भी देखने को मिल रही है दूसरी तरफ .इस दौर में ऑनलाइन राष्ट्रीयअन्तरराष्ट्रीय/ वेबीनारों की संख्या में भी तेजी से वृद्धि हुई है जिसमें विषय विशेषज्ञों के विवेचन और विश्लेषणों में भी कमी आई है बल्कि एक सामान्य जन के रूप में विषयों पर विवेचन और विमर्श बढ़ रहे हैंएक और चुनौती जो सामने आई है वह य .ह है कि वेबीनार में बिना सभागिता किए केवल फीस जमा करके या केवल फीडबैक फॉर्म भरकर ही सर्टिफिकेट लेना आसान हो गया हैक्योंकि .) एपीआई स्कोरAPI Scoreइस बात पर निर्भर करता है कि आपके (पास अकादमिक कार्यक्रमों में सहभागिता के कितने प्रमाणपत्र हैं न कि इस बात पर कि आपने कितने शोध आलेख प्रस्तुत किएउनकी , ऑनलाइन .गुणवत्ता और वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता क्या है वेबीनार्स के दौर में हर कोई अधिकाधिक प्रमाण पत्र एकत्र करने में .जुटा हैक्या यह मान लिया जाए कि महामारी का यह दौर शोध/रिसर्च एवं सैद्धांतिक विवेचन के ह्रास का दौर है. यदि यह वास्तव में ह्रास का दौर है तो उत्तरकोविड- दौर में शोध की क्या स्थिति होगी इसका अनुमान अभी से लगाया जा सकता है .

वस्तुओं का बाजार कब सूचनाओं के बाजार में बदल गया पता ही नहीं चलाचिंता इस बात की है कि बिना किसी सत्यता और प्रमाण के . सूचनाओं का यह बाजार पत्रपत्रिकाओं और सोशल मीडिया के - खास तौर पर सोशल मीडिया .माध्यम से समाज पर हावी हो गया है एक ऐसे हथियार के रूप में सामने आया है जिस पर हर कोई श्रव्य या दृश्य माध्यमों से सूचनाएं प्रसारित करने में लगा है फिर भले ही उसकी सत्यता का कोई आधार हो या न होऔर लोग ऐसी सूचनाओं को आगे . .से आगे प्रेषित करने में भी नहीं चूकतेजब किसी समाज में लोकतांत्रिक संस्थाओं का ह्रास होने लगता है और शिक्षक/बुद्धिजीवी वर्ग सत्ता का गुलाम हो जाता है या जिसकी सोच केवल अपने लाभ तक ही सीमित हो जाती है तब ऐसी ही स्थितियां उत्पन्न होती हैं. सैद्धांतिक, विचारधारायी, आनुभविक शोध के बिना कोई भी लेख किसी जनसाधारण सामान्य जन के विवेचन/की तरह ही होते हैंऐसे . शोधों में उनसब पक्षों को दरकिनार कर दिया जाता है जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अनिवार्य रहे हैं और ऐसा करना किसी भी विषय के विकास के लिए उपयुक्त नहीं कहा जा सकता. शिक्षा, विद्यार्थी और समाज के विकास के लिए एक समन्वित दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए .क्या अकादमिक संस्थान इस संदर्भ में ऐसा कोई दृष्टिकोण विकसित करेंगे कि भविष्य में ऐसा कुछ न होक्या वे शोध कार्य की ? मात्रात्मक वृद्धि के स्थान पर उसकी गुणवत्ता को सुधारने पर बल देने का प्रयास करेंगे? ताकि लोगों में शोध के प्रति संदेहास्पद स्थिति उत्पन्न न हो.

सर्वेक्षण एवं अनुसन्धान ,ज्ञान एवं सूचनाओं का तार्किक विश्लेषण , वैचारिक सहभागिता तथा अनवरत लेखन जिन्हें अकादमिक बुद्धिजीवियों की महत◌्वपूर्ण विशेषताओं में गिना जाता है वर्तमान दौर में हाशिए पर नजर आती हैंक्योंकि शोध कार्य या लेखन कार्य के . तार्किक क्षमता और प्रतिबद्धता का होना ,लिए विषय का सम्पूर्ण ज्ञान आवश्यक है लेकिन इंटरनेट के इस दौर में बिना अधिक प्रयास किए सब कुछ सरलता से उपलब्धहो जाता है तो फिर मेहनत क्यों करे ? उपलब्ध सूचनाओं को कॉपी करके काम किया जा सकता है और विकसित सॉफ्टवेयर की सहायता से पूर्व प्रकाशित लेख की दूसरी .शब्दावली बदल कर प्लेग्रिज्म से भी बचा जा सकता है/भाषा तरफ अब शोध का उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति या किसी समस्या क◌ा समाधान करना नहीं है अपितु केवल डिग्री प्राप्त करना है क्योंकि इसके बिना शिक्षण संस्थानों में पदोन्नति प्राप्त करना असंभव हो गया हैजब . शिक्षा अपने मूल उद्देश्य से भटक जाए तो उसके परिणाम कितने हानिकारक हो सकते हैं वर्तमान दौर के संकटों में इसे समझा जा सकत◌ा है .

इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि उच्च स्तरीय शोध कार्य केवल कुछ लोगों तक ही पहुंच पाते हैं क्योंकि जिन अकादमिक पत्र-पत्रिकाओं में यह प्रकाशित होते हैं वह हमारे अधिकांश विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में मंगवाए ही नहीं जातेऔर न ही उन शोध अध्ययनों पर सार्वजानिक बौद्धिक विमर्श किये जाते हैंराबर्ट . उपभोक्ता समाज ने " बोकॉक का यह तर्क प्रासंगिक जान पड़ता है कि महानगरीय बुद्धिजीवियों को उत्पन्न किया है जो उत्पादित वस्तु के बाजार हेतु चिंतन को विकसित करते हैं परिणाम स्वरुप सामाजिक सरोकारों के प्रश्न हाशिए पर चले जाते हैं".

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि शोध कार्य या पुस्तक लेखन पूरी तरह शोधार्थी और शिक्षकों की अकादमिक स्वायत्ता का सवाल है उसमे किसी भी तरह का राजनीतिक या अन्य हस्तक्षेप बंधक मस्तिस्क)captive mind) का परिचायक है। इस तरह की संभावनाएं शिक्षक, शोधार्थी, शैक्षणिक संस्थानों यहाँ तक की समूची शिक्षा व्यवस्था को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से गैरआलोचनात्मक बनाती है। - यदि हमारे शैक्षणिक संस्थान उन लोकतान्त्रिक समाजों के शैक्षणिक संस्थान हैं जिहोंने संवैधानिक मूल्यों केप्रति अपनी प्रतिबद्धता दर्शायी है, अब अगर यह संस्थान स्वीकृत संवैधानिक मूल्यों का निषेध करते हैं तो यह न केवल लोकतंत्र के समक्ष अपितु संविधान के समक्ष भी गंभीर चुनौती उत्पन्न करते हैं। युवा पीढ़ी जब शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश

लेती है तब वह ईमानदार, ऊर्जावान, साहसी, और आदर्शवादी चरित्र की होती है उस समय उसे एक प्रतिबद्ध दृष्टिकोण के साथ विकास की प्रक्रिया के साथ जोड़ा जा सकता है यदि शैक्षणिक संस्थान उसे उपयुक्त चिंतन और आलोचनात्मक चेतना का परिवेश उपलब्ध करवा सके। इस में दो राय नहीं है कि इस तरह स्वतंत्र एवं वैचारिक चिंतनशोध / का ह्रास आने वाले समय में मानवीय मूल्यों के प्रतिकूल जा सकता है विश्वविद्यालयों को किसी विचारधारा या /और शैक्षणिक संस्थानों उद्योग जगत के विशिष्ट हितों की पूर्ति करने वाले संस्थान के रूप में परिवर्तित कर सकता है।

निष्कर्ष

ज्ञान की खोज एवं ज्ञान की उपयोगिता से सम्बंधित पक्ष आज भी उतने ही उपयोगी हैं जितने पारम्परिक समाजों में थे। इसलिए सामाजिक समस्याओं के प्रति रूचि, समस्याओं का प्राथमिकता के क्रम में निर्धारण और समाधान के विकल्प खोजने में ज्ञान बुद्धिजीवियों की भूमिका आज भी उतनी ही या कहें कि उससे अधिक महत्वपूर्ण है। यह सोचने का व बहस का विषय है कि अनुसन्धान कार्य को अनुदान देने वाली संस्थाएं किस प्रकार के निष्कर्ष चाहती हैं? ज्ञान मानव हित के लिए या ज्ञान बाजार के लिए जैसे सवाल आज ज्यादा महत्वपूर्ण हुए हैं।

सन्दर्भ

बोकॉक ,राबर्ट .2008, कंसम्पशन .टेलर एंड फ्रांसिस ग्रुप :रूटलेज ,

रसेल, बर्ट्रांड .2010, एजुकेशन एंड सोशल आर्डर ,रूटलेजटेलर एंड : .फ्रांसिस ग्रुप

फ्रेरे, पाओलो2000 ., पेडागोजी ऑफ़ द ओप्रेसड, न्यूयॉर्क .ब्लूम्सबरी :

http://dst.gov.in/sites/default/files/STI%20Policy%202013%20Hindi.pdf

https://www.ilbs.in/?page=internal&itemid=76